LLB 3 year 3rd sem LLB 5 year 5th sem

विधिशास्त्र,

Unit 5

Philosophical School-Kant, Hegel.
The Modern-PIL;Social justice,
Compensatory Jurisprudence.
Feminist Jurisprudence.

विधिशास्त्र की दार्शनिक विचारधारा (Philosophical School of Jurisprudence)

आस्टिन के विधि प्रमाणवाद विचारधारा के परिणाम स्वरूप लोगों में यह धारणा प्रबल हुई कि राज्य की अवपीड़क शक्ति ही विधि का एकमात्र आधार है। इसी प्रकार सैविनी द्वारा समाज में प्रचलित प्राचीन रीति-रिवाजों प्रथाओंतथा नैतिक मूल्यों को ही विधि का प्रमुख स्रोत बताया गया है 16वीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में विधि की एक नई विचारधारा का उदय हुआ जिसे विधि की दार्शनिक शाखा कहा जाता है।

विधिशास्त्र की दार्शनिक विचारधारा नीतिशास्त्र के सिद्धांतों पर आधारित होने के कारण इसे नीति शास्त्रीय शाखा भी कहा जा सकता है। इसके समर्थकों का मानना है कि विधिदर्शन को नैतिक मूल्यों पर आधारित किया जाना चाहिए ताकि लोगों को सदाचारी जीवन जीने की प्रेरणा मिल सके।दार्शनिक शाखा के विचारको के अनुसार विधि का प्रमुख कार्य समाज में शांति व्यवस्था बनाए रखना है और विधि द्वारा मानव आचरण पर प्रतिबंध उसी दशा में लगाए जाने चाहिए यदि समाज में व्यक्ति की स्वतंत्रता में समृद्धि करते हो यही कारण है कि इस विचारधारा के अध्ययन की मुख्य विषय वस्तु है ' विधि जैसी कि वह होनी चाहिए न कि वर्तमान विधि जैसी कि वह है या भूतकालीन विधि जैसी कि वह पूर्व में थी।'

विधिशास्त्र की दार्शनिक शाखा के प्रमुख लक्षण --

1.न्याय की अवधारणा में नैतिकता का तत्व विद्यमान है। विधि न्याय प्राप्त का एक साधन है विधि को नैतिकता से पूरी तरह अलग नहीं किया जा सकता।

2.दार्शनिक शाखा के अध्ययन की मुख्य विषय वस्तु यह है कि न्याय सुनिश्चित करने हेतु विधि किस प्रकार से सक्रिय भूमिका निभाती है।

3. विधि न्याय प्राप्त का एक साधन मात्र है कि स्वयं उद्देश्य

4.इस विचारधारा का प्रयोजन विधि की संकल्पना में नैतिकता को उचित स्थान दिलाना है।

इमैन्युअल कान्ट ---

कान्ट ने दार्शनिक विचारधारा का समर्थन करते हुए स्पष्ट किया कि नीति शास्त्र और विधि एक ही न होकर इनका क्षेत्र अलग-अलग है ।नीतिशास्त्र मानव को किसी कार्य या कृत्य को करने के लिए आंतरिक प्रेरणा देता है जबकि विधि का संबंध व्यक्ति के वाह्न (भौतिक) जीवन से होता है। अतः विधि का नियंत्रणकारी प्रभाव केवल व्यक्ति के बाह्य कृत्यों तक ही सीमित रहता है परंतु नीतियां नैतिकता व्यक्ति को आंतरिक प्रेरणा देते हुए अच्छे बुरे में भेद करने की क्षमता प्रदान करती है। कान्ट के अनुसार व्यक्ति सदैव अपनी आवश्यकताओं से पराभूत होकर कार्य नहीं करता बल्कि उसकी आंतरिक सोच जो नीति मूलक होती है उसे किसी कृत्य को करने या न करने के लिए प्रेरित करती है ।इसे कान्ट ने निरपेक्ष आदेशक सिद्धांत निरूपित किया है जो नैतिक और विधिक सिद्धांतों का मूल आधार है ।

कान्ट ने निरपेक्ष आदेशक सिद्धांत की व्याख्या करते हुए कहा है की व्यक्ति से अपेक्षा की जाती है कि वह अपने कार्यों को इस प्रकार कार्यान्वित करें ताकि उसे अधिकतम सर्वमान्य आदर्शों की पूर्ति हो सके समता के अधिकार को व्यक्त की स्वतंत्रता के लिए एक आवश्यक शर्त मानते हैं तथा संपत्ति के अधिकार को मानव के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं ।कान्ट के अनुसार न्याय की संकल्पना सापेक्ष स्वरूप की है जो स्थान विशेष की सामाजिक,आर्थिक, नैतिक ,राजनैतिक आदि परिस्थितियों तथा समाज के मूल्यों पर निर्भर करती है ।अतः विधि को न्याय के अनुरूप होने के लिए उसका औचित्य पर आधारित होना आवश्यक है ताकि यह उक्ति साकार हो सके कि जो भी विधिपूर्ण है वह न्याय पूर्ण भी है ।कान्ट ने कहा है कि राज्य को केवल दो प्रमुख कार्य तक सीमित रहना चाहिए पहला राज्य में शांति व्यवस्था बनाए रखना तथा दूसरा न्यायप्रशासन सुनिश्चित करना ।

जनता को राज्य तथा सरकार की युक्ति युक्ति आलोचना करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए परंतु उसका प्रतिरोध करने की छूट नहीं दी जानी चाहिए ।

हीगेल**(Hegel)** कांन्ट के मानव इच्छा की स्वतंत्रता संबंधी सिद्धांतों को आगे बढ़ाते हुए हीगेलने अभीकथन किया कि राज्य द्वारा विधि का निर्माण किए जाने का उद्देश्य समाज में व्याप्त मानवीय दंभ(इगो) के कारण उदभुत होने वाले टकराव का निवारण करना है अतः विधि की प्रमुख भूमिका होनी चाहिए कि व्यक्ति के स्वार्थ और पर हित में उचित सामंजस्यबना रहे इसलिए राज्य की विधि इन्हें संतुलित बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है राज्य का अस्तित्व विभिन्न समुदायों तथा परिवारों के एकीकरण का परिणाम है कि हीगेल राज्य के तीन कार्यों को सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते हैं पहला सार्वभौमिक कार्य, दूसरा राज्य के वैयक्तिक कार्य तथा तीसरा नागरिकों से संबंधित कार्य। हीगेल प्रजातांत्रिक व्यवस्था तथा सार्वजनिक मताधिकार के विरोधी थे। उन्होंने वंशानुगत राजतंत्र को उचित ठहराते हुए कथन किया कि शासक मे राज्य के वैयक्तिक कार्य निहित होने के कारण वह प्रजा को नियंत्रण में रखने तथा राज्य की शांति व्यवस्था बनाए रखने में सक्षम होता है ।हीगेल का सबसे महत्वपूर्ण योगदान यह है की विधि को विकासशील प्रक्रिया का परिणाम माना है हीगेल के विधि के दार्शनिक सिद्धांत को भारतीय विधि के विकास के

परिप्रेक्ष्य में भली-भांति समझा जा सकता है जो मूल्त: इगलैंड के कामन ला पर आधारित थी। स्वतंत्रता के पश्चात भारत की राजनीतिक तथा सामाजिक परिस्थितियों मे आमूल परिवर्तन हुए जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश कालीन विधि को विकासशील भारतीय परिस्थितियों के अनुसार ढालना आवश्यक हो गया। समाजवादी अर्थव्यवस्था कायम करने के लिए जमीदारी उन्मूलन कानून, परिसीमनसंबंधी कानून पारित किए गए। संविधान के भाग **4** मे उपबंधित नीति निदेशक सिद्धांतों को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए अनेक नए कानून पारित किए गए ताकि नागरिकों को समान सामाजिक एवं आर्थिक न्याय तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राप्त हो ताकि कल्याणकारी राज्य की संकल्पना साकार हो।

विधि की दार्शनिक विचारधारा का प्रभाव-----

विधि की दार्शनिक शाखा तथा इसकी पूर्वर्ती ऐतिहासिक शाखा तथा विश्लेषणात्मक शाखाओं का संयुक्त प्रभाव यह हुआ कि विधिशास्त्रियों ने अपना ध्यान इस ओर केंद्रित किया की विधि की प्रकृति उसकी विषय वस्तु एवं उद्देश्य तथा राज्यों के साथ विधि के संबंधों के बारे में नए सिरे से पून: विचार किया जाना चाहिए इसमें एक विचारधारा का अंध समर्थन किया जाना उचित नहीं है।

अतः यह कहा जा सकता है कि विधिशास्त्र की दार्शनिक विचारधारा का मूल लक्ष्य न्यायिक आदर्शों को विकसित करना था ताकि विधि लोकहित का सशक्त साधन बन सके क्योंकि न्यायालयों द्वारा दिए जाने वाले निर्णय इन्ही आदर्शात्मक सिद्धांतों पर आधारित होते हैं।कांट फिचटे और हीगेल की विधि संबंधी दार्शनिक विचारधारा में यूरोपियन विधि दर्शन को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया है लेकिन वे इसे विधिशास्त्र के रूप में स्वतंत्र शाखा के रूप में विकसित करने में विफल रहे क्योंकि पश्चातवर्ती विधि दर्शन अंशतः प्राकृतिक विधि सिद्धांत तथा अंशतः विश्लेषणात्मक प्रमाणवादी विचारधारा से विकसित हुआ।कालांतर में विधिशास्त्र की ऐतिहासिक तथा सामाजिक विचारधारा के बदलते प्रभाव के कारण विधि की दार्शनिक विचारधारा विलुप्त होती गई।

लोकहित वाद
[Public Interest Litigation-PIL]

भारत की गरीब तथा निर्धन लोगों को सामाजिक तथा आर्थिक न्याय दिलाने के लिए नि :शुल्क कानूनी सहायता ,लोक अदालतों आदि जैसी जनकल्याणकारी योजनाएं लागू की जाने के बावजूद लोक सेवकों में जन कल्याण के प्रति उदासीनता है इसलिए जनता के प्रति शासन तंत्र की मनमानी तथा लापरवाही पर उचित अंकुश लगाने के उद्देश्य से उच्चतम न्यायालय की कुछ सक्रिय तथा क्रियाशील न्यायालयों ने परंपरागत सुनवाई के अधिकार के रूढिगत नियमों को उदार बनाते हुए जन साधारण को लोकहित के मामलों द्वारा न्याय सुलभ कराना प्रारंभ कर दिया।इस

प्रकार न्यायिक क्रियाशीलता के परिणाम स्वरुप लोकहित के मुकदमों का प्रादुर्भाव हुआ जिसने समाज के दलित, उपेक्षित व साधनहीन एवं अनपढ़ लोगों को उचित न्याय मिलना संभव हुआ।

भारत में इस नवीनतम न्यायिक तकनीकी का प्रारंभ **1976** में उच्चतम न्यायालय द्वारा निर्मित वाद मुंबई कामगार सभा बनाम अब्दुल भाई के निर्णय से हुआ ।भारत के संविधान के आमुख **(Preamble)**से प्रेरणा लेते हुए उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश वी.आरकृष्ण अय्यर ने सर्वप्रथम इस बाद में कामगारों की ओर से प्रतिनिधि याचिका को स्वीकार करते हुए सुनवाई के अधिकार के नियम को शिथिल करते हुए न्यायधीशोंकी सृजनात्मक भूमिका को अधिक महत्व दिया ।

भारत में लोकहित के वादों के विकास में न्यायाधीशों के स्थानांतरण (एस.पी गुप्ता बनाम भारत संघ)का मामला एक मुख्य आधार स्तंभ माना जाता है जिसके परिणाम स्वरूप अब कोई भी जन सेवी व्यक्ति लोकहित मेयाचिका करके या न्यायालय को साधारण पत्र लिखकर सार्वजनिक हित से संबंधित किसी मामले में न्याय प्रदान करने की(प्रार्थना) याचना कर सकता है ।लोकहित वाद को अधिक लोकप्रिय बनाने में पत्रकारों ,समाजसेवी संस्थाओं, निजी संगठनों तथा जन सेवकों की विशेष भूमिका रही है जिसके द्वारा समय-समय पर शासन तंत्र की मनमानी लापरवाही अराजकता तथा शोषणकारी नीतियों के विरुद्ध लोकहित की याचिका के माध्यम से न्यायालय में आवाज उठाकर जनसाधारण की समस्याओं को निपटाने का प्रयास किया जाता है।

लोकहित के वादों का औचित्य----

लोकहु वादों का औचित्य स्थापित करते हुए प्रोफेसर एच आर डब्ल्यू वेड ने लिखा है कि यदि आवेदक या अभ्यावेदक के पास मुकदमे का उचित कारण है ,तो केवल इस आधार पर कि वह प्रकरण(मामले)से व्यक्तिगत रूप से प्रभावित नहीं हुआ है ,उसे न्यायालय के द्वार से नहीं लौटा दिया जाना चाहिए क्योंकि इसके परिणाम स्वरूप शासन तंत्र को विधि का उल्लंघन करते हुए मनमानी करने की छूट मिल जाएगी जो सामाजिक हित की दृष्टि से उचित नहीं होगा ।

लोकहित वाद में लोकस स्टैंडी (सुनवाई के अधिकार)के नियम को शिथिल किए जाने का औचित्य बताते हुए न्यायमूर्ति पी.यन.भगवती ने पीपुल्स यूनियन फार डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ के बाद में अभी निर्धारित किया कि यदि जनता का एकमात्र सदस्य भी साधारण पत्र द्वारा न्यायालय का ध्यान जनता की किसी गंभीर विधिक समस्या या छति की ओर आकृष्ट करता है तो न्यायालय को चाहिए कि सभी तकनीकी प्रक्रियात्मक औपचारिकताओं को एक तरफ रखते हुए उस पत्र को याचिका के रूप में स्वीकार करके उस पर न्यायिक कार्यवाही करें।

भारत में लोकहित वादों के संबंध में उल्लेखनीय तथ्य--

भारत में लोकहित वादों के संबंध में निम्नलिखित बातें उल्लेखनीय है **1.**

लोकहित याचिकाओं का प्रयोग केवल आधारभूत अधिकारों के उल्लंघन तक ही सीमित नहीं है बल्कि इनका प्रयोग ऐसे मामलों में भी किया जा सकता है जिनके कारण किसी व्यक्ति या वर्ग को कोई भी विधि क्षति ,हानि या आपकृति हुई या होने की संभावना है **।**

2.लोकहित के मामले में आवेदक कोई भी व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह हो सकता है जो सामाजिक या आर्थिक दृष्टि से कमजोर या असहाय होने के कारण स्वयं न्यायालय तक पहुचने में असमर्थ है **।**

3. ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों की ओर से जनता का कोई भी जन सेवी सदस्य या संगठन न्यायालय से उचित आदेश निर्देश या अनुतोष के लिए आवेदन कर सकता है

4यदि प्रकरण मामला किसी मूलभूत अधिकार के उल्लंघन से संबंधित है तो याचिका अनुच्छेद **32** के अंतर्गत उच्चतम न्यायालय में प्रस्तुत की जा सकती है परंतु किसी सामान्य अधिकार के उल्लंघन की दशा में याचिका संबंधी राज्य की उच्च न्यायालय में दायर की जा सकती है **।**

5. याचिका पर सुनवाई के पश्चात शिकायत को दूर करने के लिए न्यायालय उचित निर्देश आदेश या रिट जारी कर सकेगा जिसमें कोई निश्चित कार्य किए जाने का निर्देश भी हो सकता है तथा उस पर निरंतर देखरेख रखने हेतु आदेश भी दिया जा सकता है **।**

6.लोकहित वाद की इस नवीन तकनीकी के अंतर्गत कोई भी व्यक्ति जनहित में न्यायालय के नाम पर एक साधारण पत्र लिखकर भी जनता की किसी समस्या की ओर न्यायालय का ध्यान आकृष्ट कर सकता है**।**

राज्य के विरुद्ध लोकहित को संरक्षण **-----**

भारत के संविधान के निर्माताओं द्वारा संविधान में मूलभूत अधिकारों का प्रावधान रखने जाने का मुख्य उद्देश्य था कि नागरिकों को राज्य की ज्यादितियो के विरुद्ध उचित संरक्षण दिलाया जा सके**।** मौलिक अधिकारों द्वारा राज्य की मनमानी शक्ति पर उचित अंकुश लगाने का प्रयास किया है **।**इन अधिकारों की संवैधानिक गारंटी द्वारा केंद्र ,राज्य या स्थानीय सरकारों के कार्यों पर युक्तियुक्त प्रतिबंध लगाए गए हैं और उनकी सीमाएं निर्धारित की गई है **।**भारतीय संविधान में कल्याणकारी राज्य के लक्ष्य के बावजूद सामाजिक न्याय की कल्पना समाज के एक बड़े भाग के लिए निरर्थक थी और इसका लाभ केवल समृद्ध और संपन्न लोगों तक ही सीमित था परंतु भारत की न्याय प्रणालियों में लोकहित कार्यवाही की पदार्पण से अब दलित और शोषित लोगों के लिए मौलिक अधिकार कपोल कल्पना मात्र न रह कर वास्तविकता में परिवर्तित हो गई है**।**

बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ **1984** सुप्रीम कोर्ट

इस प्रकरण में उच्चतम न्यायालय ने निर्धारित किया कि सामाजिक और आर्थिक न्याय को सार्थक रूप देकर समाज के उपेक्षित वर्ग के लोगों को मूलभूत मानवीय अधिकार दिलाना तथा सभी को न्याय के समान अवसर उपलब्ध कराना ही संविधान का मुख्य लक्ष्य है**।**

अखिल भारतीय शोषित कर्मचारी संघ(रेलवे)बनाम भारत संघ **1981**

इस लोकहित मामले में सरकार ने प्रति शपथ पत्र पर यह तकनीकी आपत्ति उठाई थी की अर्जी दार एक अपंजीकृत संग होने के कारण उसके द्वारा दी गई याचिका विचार योग्य नहीं थी। परंतु न्यायालय ने इस प्रक्रियात्मक औपचारिकता संबंधी आपत्ति को अमान्य खारिज करते हुए मामले की सुनवाई जारी रखी ।शासकीय अराजकता या मनमानी रोकने के लिए लोकहित मामले द्वारा कारागार संबंधी नवीन नियमों का सूत्रपात किया गया जिसके द्वारा पीड़ित व्यक्तियों को अधिकार और उपचार प्राप्त हुए।

हुसैनारा खातून,रूदलशाह, भीम सिंह के लोकहित प्रकरण के पश्चात अब सरकार द्वारा अवैध रूप से बंदी रखे गए विचाराधीन कैदियों को तुरंत मुक्त कर देने मात्र से काम नहीं चलेगा बल्कि सरकार को ऐसे बंदियों को क्षतिपूर्ति के रूप में समुचित प्रतिकर भी देना होगा।

सामाजिक न्याय (Social Justice)

सामाजिक न्याय एक युग्म शब्द है यह दो विशेषणों से मिलकर बना है -सामाजिक और न्याय, सामाजिक न्याय इन दो शब्दों की प्रकृति सामान्य विवेचना के आधार पर सामाजिक न्याय शब्द का अर्थ स्पष्ट करने हेतु पहले सामाजिक शब्द को समझना आवश्यक है सामाजिक का सामान्य अर्थ समाज से संबंधित परिस्थितियों तथा समाज के सामान्य अर्थ मनुष्यों के विभिन्न पारस्परिक संबंधों की व्यवस्था के रूप में लिया जाता है। यथा -पारिवारिक ,धार्मिक ,आर्थिक ,राजनीतिक और उनमें से प्रत्येक प्रकार के संबंधों को ताना-बाना है ।इस दृष्टि से सामाजिक आर्थिक या किसी अन्य प्रकार की मानवीय संबंध को सामाजिक शब्द की परिधि के बाहर रखना अतर्कसंगत है ।न्याय शब्द का अर्थ समझने के लिए छः भारतीय दर्शनों में से एक दर्शन न्याय को जानना आवश्यक है इसमें वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करने की विधा को न्याय दर्शन की संज्ञा प्रदान की गई है ।प्रसिद्ध व्याकरण शास्त्री पाणिनि ने न्याय शब्द को दो रूप में परिभाषित किया है सांसारिक एवं सामाजिक जी ने क्रमशः प्राकृतिक तथा यथार्थवादी कहा जाता है।

नागरिक स्वतंत्रता के संरक्षक दार्शनिक प्लेटो के अनुसार स्वतंत्र और चारित्रिक व्यवस्था न्याय का अनुपालन है। इस प्रकार सामाजिक और न्याय इन दो शब्दों की विवेचना के आधार पर सामाजिक न्याय का अर्थ समझने में सुविधा हो जाती है ।अतः हम कह सकते हैं कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को जीवन की मूलभूत अनिवार्य आवश्यकताओं यथा भोजन ,वस्त्र एवं मकान की पूर्ति हो ।प्रत्येक व्यक्ति को विकास का उचित अवसर मिले ।व्यक्ति का व्यक्ति के द्वारा शोषण रोका जाए और आर्थिक एवं राजनीतिक सत्ता का विकेंद्रीकरण हो ।

सामाजिक न्याय का विचार मूलतः इस आदर्श पर आधारित है कि समाज में सभी मनुष्य बिना किसी संप्रदाय, रंग ,जाति या धर्म के भेदभाव के बिना समान है। सामाजिक न्याय की अवधारणा मौलिक है फिर भी इसमें राजनीतिक असंतोष समाज के लिए आदर्श राज्य की अवधारणा प्रस्तुत करता है ।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि सामाजिक न्याय सीमित परंतु महान अर्थों को समेटे हुए हैं। इसका मुख्य कारण है सामाजिक न्याय न केवल समाज में न्याय को स्थापित करने में मदद करता है बल्कि वृद्ध, गरीब, बालकों को और महिलाओं को अनेक प्रकार के शोषण उत्पीड़न और अत्याचार से उनकी रक्षा करता है।

भारतीय संविधान में सामाजिक न्याय के उपबंध--- सामाजिक न्याय भारतीय संविधान का मूल मंत्र है भारतीय संविधान की प्रस्तावना इसका सही उदाहरण है। ।प्रस्तावना हम भारत के लोग, भारत ------ अंगीकृत,अधिनियमित और आत्मर्पित करते हैं। इसके अलावा भारत संविधान में सामाजिक न्याय के आदर्श को अनेक रूपों में स्वीकार किया गया है भारतीय संविधान का भाग 3 मूल अधिकार तथा भाग 4 राज्य के नीति निदेशक तत्व में सामाजिक न्याय को प्राप्त करने के विभिन्न उपायों का उल्लेख किया गया है ।

सामाजिक न्याय में न्यायपालिका की भूमिका----

भारतीय संविधान के समग्र ढांचे के अंतर्गत न्यायपालिका को सिर्फ विवादों के निपटारे का ही नहीं बल्कि सामाजिक आर्थिक परिवर्तन का भी वाहक माना जाता है। इसे मूलभूत अधिकारों की रक्षा तो करनी ही होती है साथ ही कमजोर वर्गो तथा आम आदमियों को सामाजिक आर्थिक न्याय उपलब्ध कराने के उद्देश्य से निर्मित विधियों और कार्य पालकी परियोजनाओं के क्रियान्वयन को रक्षित करके सामाजिक आर्थिक क्रांति का मार्ग भी प्रशस्त करना भी इसका दायित्व है। सामाजिक आर्थिक न्याय की स्थापना में न्यायपालिका की भूमिका से संबंधित पहला मामला मद्रास राज्य बनाम चंम्पकम दोराईराजन का था। इसके पश्चात कई अन्य मामलों में उच्चतम न्यायालय ने सामाजिक न्याय संबंधी अवधारणा को स्थापित किया है ।

Feminist Jurisprudence(नारीवाद विधिशास्त्री)

नारीवाद विधिशास्त्र नारीवाद राजनैतिक आंदोलन विचारधाराओं और सामाजिक आंदोलनों की एक श्रेणी है जो राजनैतिक ,आर्थिक, व्यक्तिगत और सामाजिक लैंगिग समानता को परिभाषित करने, स्थापित करने और प्राप्त करने का एक लक्ष्य है। इसमें महिलाओं के लिए पुरुषों के समान शैक्षिक और पेशेवर अवसर स्थापित करना शामिल है। नारीवादी विमर्श संबंधी आदर्श का मूल उद्देश्य यही रहता है। कि कानूनी अधिकारों का आधार लिंग आधारित न हो अत:लैंगिग असमानता की प्रकृति एवं कारणों को समझना व इसके फलस्वरूप पैदा होने वाले लैंगिग भेदभाव की राजनीतिक और शक्ति संतुलन के सिद्धांतों पर इसके असर की व्याख्या करना है।

नारीवादी सिद्धांत सैद्धांतिक या दार्शनिक क्षेत्रों में नारीवाद का विस्तार है ।इसमें समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र, मनोविश्लेषण और दर्शन जैसे कई विषय शामिल है नारीवादी सिद्धांत में खोजे गए विषयों में भेदभाव रूढ़िवादिता उत्पीड़न और सत्ता शामिल है । नारिवादी सिद्वांत में खोजे गये विषयों मे भेदभाव, रुढ़िवादीता उत्पीड़न और पृत सत्ता शामिल हैं।

1970 के दशक में फ्रांसीसी नारीवादी विचार को द्वारा लिखा गया कि एक नारीवादी मनोविश्लेषक और दार्शनिक द्वारा नारीवाद को सार्वभौमिक मुक्ति आंदोलन के रूप में चित्रित करने पर ध्यान केंद्रित किया है।सम -लैंगिग लोगों पर नारी विचार भिन्न है ।कुछ नारीवादी समलैंगिग महिलाओं को स्त्री के रूप में नहीं देखते उनका मानना है कि जन्म के समय उनके लिंग के कारण उन्हें अभी पुरुष विशेषाधिकार प्राप्त है ।कुछ नारीवादी समलैंगिकता बाद को विचारकों के कारण असवीकार करते हैं। कि लिंग के बीच सभी व्यवहारिक मतभेद सामाजिकरण का परिणाम है।

सारा हमद का मत है कि उत्तर औपनिवेशिक नारीवाद पश्चिमी नारीवादी विचार के कुछ आयोजन परिसरों के लिए एक चुनौती पेश करती है ।1960 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका नागरिक अधिकारों के आंदोलनों और अफ्रीका ,कैरीबियन ,लेटिन अमेरिका के कुछ हिस्सों और दक्षिण पूर्व एशिया में यूरोपीय उपनिवेशवाद के पतन के साथ इस प्रवृति में तेजी आई ।उस समय से विकासशील देशों और पर्व उपनिवेशोंमें रहने वाली महिलाएं जो रंग या विभिन्न जातीयता की है या गरीबी मे रह रही है ने अतिरिक्त नारीवाद का प्रस्ताव दिया है। भारत के संदर्भ में नारीवादी

विधिशास्त्र---

भारत में स्वतंत्रता की पूर्व ही स्त्रियों की सामाजिक सुधार के लिए आंदोलन शुरू हुए थे जिसके परिणाम स्वरूप बाल विवाह प्रतिषेध सती प्रथा का अंत आदि सुधार किए गए परंतु आर्थिक सामाजिक एवं राजनीतिक समानता के लिए उपबंध भारतीय संविधान में विस्तृत रूप से किए गए हैं जिसमें स्त्रियों और पुरुषों को समान रूप से मताधिकार प्रदान किया गया है तथा नीति निर्देशक तत्वों के अंतर्गत समान कार्य के लिए समान वेतन का प्रावधान किया गया है तथा इसके पश्चात जन्म पूर्व लिंग परीक्षण निदान तकनीक अधिनियम 1944 ,गर्भ का चिकित्सकीय समापन अधिनियम 1970 ,दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961 ,महिलाओं को घरेलू हिंसा संरक्षण अधिनियम 2005,अनैतिक व्यापार निवारण अधिनियम 1956 आदि पारित कर भारतीय संसद में नारी समानता के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण कदम उठाए थे तथा लैंगिक अपराधों से महिलाओं की सुरक्षा करने के लिए बलात्कार से संबंधित विधि में संशोधन करके 2013 में और अधिक कठोर दंड का प्रावधान किया गया ।

माननीय उच्चतम न्यायालय विशाखा बनाम राजस्थान राज्य के बाद में कामकाजी महिलाओं का कार्यस्थल पर यौन शोषण रोकने के लिए विस्तृत दिशा-निर्देश जारी किए अतः इस प्रकार हम कह सकते हैं कि विभिन्न प्रावधानों के अंतर्गत नारी के सामाजिक आर्थिक राजनीतिक समानता के लिए अभूतपूर्व प्रयास किए गए हैं जो कि व्यावहारिक रूप से भी अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए काफी हद तक सफल रहे

Compensatory Jurisprudence (प्रतिकारात्मक विधिशास्त्र)

साधारण दीवानी न्यायालय(civil law)द्वारा प्रवृत्त विधि के अंतर्गत पीड़ित को प्रतिकर प्रदान करना एक मान्यता प्राप्त सिद्धांत है अपकृत्य विधि के अंतर्गत पीड़ित व्यक्ति को शरीर या संपत्ति संबंधी क्षति के लिए प्रति कर का दावा कर सकता है। हाल ही में फरवरी 2011 में दक्षिण एशियाई देशों जिसमें बांग्लादेश ,भूटान ,नेपाल ,भारत, श्रीलंका

,मालदीव ,पाकिस्तान अफगानिस्तान आदि देश शामिल हैं, मे अपराध शास्त्र संबंधी ज्ञान के प्रचार प्रसार हेतु उपयुक्त सोसाइटी का गठन किया गया है।यद्यपि प्रतिकार का प्रावधान सिविल विधि के अंतर्गत एक प्रमुख अनुतोष है परंतु समय के साथ-साथ अपराध से पीड़ित व्यक्तियों को भी उनके पुनर्वास के लिए प्रति कर की आवश्यकता को महसूस किया जाने लगा।अपराध पीड़ितों के लिए पुनः स्थापना हेतु उनके लिए विभिन्न प्रकार की सेवाएं सुविधाएं उपलब्ध कराना आवश्यक होता है जो निम्नलिखित हैं **1.**परामर्श **2.**पक्ष समर्थन **3.**अभियोजन प्रक्रिया में सहायता **4.**विचारण प्रक्रिया में पीड़ित की सहायता **5.**पीड़ित को हिंसा से बचाना **6.**अपराधी और पीड़ित के बीच मध्यस्थता

विधिक सुधारों द्वारा पीड़ित के अधिकारों का संरक्षण-- राष्ट्र संघ द्वारा **1985** में सत्ता के दुरुपयोग तथा अपराधियों के लिए न्याय के मूलभूत सिद्धांतों की घोषणा की इन से प्रेरणा लेते हुए भारत सहित अनेक देशों ने अपराध पीड़ितों की सहायता के लिए प्रति कर के कारगर उपाय की तथा दंड प्रक्रिया संहिता संशोधन अधिनियम **,2008** द्वारा संहिता में नई धारा **357** ए जोड कर दण्ड प्रक्रिया विधि के प्रावधान के रूप में **31-12- 2009** से लागू किया गया जिसके अंतर्गत राज्य सरकार केंद्रीय सरकार के साथ मिलकर ऐसे पीड़ित या उसके आश्रितों को पुनर्वास हेतु प्रतिकर दिलाने के लिए योजना तैयार करेंगे **IPC**की धारा **326 A and 326B** जोड़कर अम्ल हमले से पीड़ितताओं को चिकित्सा व पुनर्वास हेतु अभियुक्त पर किए गए जुर्माने से धन राशि प्रदान की जाएगी।

सहेली बनाम पुलिस कमिश्नर दिल्ली **1990** सुप्रीम कोर्ट के वाद में महिलाओं के सिविल अधिकार संगठन ने अनुच्छेद **32** के अधीन जनहित याचिका द्वारा दिल्ली पुलिस के अवैध कारनामों को उजागर किया इसमें उच्चतम न्यायालय ने पीड़िता को राज्य सरकार से ₹ **75000** की राशि के प्रतिकर केरूप में प्रदान की।

अंकुश शिवाजी गायकवाड बनाम महाराष्ट्र राज्य **2013 SC** इस वाद में उच्चतम न्यायालय ने निर्णय किया कि विचारण न्यायालय को यह अधिकार है और साथ में कर्तव्य है कि मामले में पीड़ित प्रतिकर दिया जा रहा है या नहीं। इस बात का उल्लेख उसे निर्णय में भी करना चाहिए।

सुरेश व अन्य बनाम हरियाणा राज्य **2014** सुप्रीम कोर्ट प्रत्येक अपराधिक मामले में न्यायालय को संज्ञान लेते समय यह पता लगाना चाहिए कि क्या पीड़ित को तुरंत अंतरिम प्रतिकरकी जरूरत है तो कोर्ट को ऐसे आदेश जारी करने चाहिए।साथ ही यदि मामले में जुर्माना पर्याप्त प्रतिकर नहीं है तो पर्याप्त प्रतिकरके लिए राज्य सरकार को निर्देशित करें ।